जैन और बौद्व युग में संगीत

डॉ. विजय कुमार
संगीत विभाग, गुरू नानक नैशनल कालेज, नकोदर, जालन्धर, पंजाब

संगीत काव्य से प्रायः सम्बंधित रहा है, कभी बाहरी रूप और कभी सूक्ष्म रूप में। कभी वह शास्त्रीय संगीत के अनुरूप राग–रागनियों में लिखा जाकर, काव्य का श्रृंगार बनता है, तो कभी लोक–धुनों के रूप में आन्तरिक रूप में तो संगीत काव्य का एक महत्वपूर्ण तत्व ही है।

काव्य और संगीत का घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक दूसरे में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। तात्पर्य यह है कि एक के बिना दूसरे की रंचकता और रोचकता नष्ट हो जाती है। संगीत यद्यपि एक स्वतंत्र कला है तथपि जब वह किसी साहित्य से सम्पृक्त होता है,तो उसका उत्कर्ष और भी बढ़ जाता है। संगीत और साहित्य दोनों का उद्देश्य है वैयवितक, सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक उत्थान। जो कार्यमानव जीवन के लिए साहित्य करता है,वही कार्य संगीत भी करता है।[1]

जैन और बौद्व युग में विशेषतः ब्राह्माणों ,यज्ञों और वर्णाश्रमों का विरोध हुआ है। इस काल में लोगों ने पशुओं के बलिदान और धार्मिक आडम्बरों के खिलाफ आवाज उठानी आरम्भ की, जिसका श्रेय महावीर स्वामी और गौतम बुद्व को जाता है। इन दोनों महापुरूषों ने एक नयी विचार क्रान्ति को जन्म दिया। इस काल तक संगीत एक मात्र ब्राह्माणों के हाथों में था। इसी काल में सर्व साधारण के हाथों में संगीत पहुंच गया।

महावीर स्वामी ने कहा है कि निम्न वर्ग के लोग भी ईश्वर उपासना के लिए संगीत की शिक्षा लेने के अधिकारी हैं।[2] महावीर स्वामी ने संगीत का आधार कुछ सिद्वान्तों पर रखा। जैसे यदि संगीत की शिक्षा लेनी हो तो अपने जीवन को बुराईयों से दूर रखे', जीव जन्तु को मत मारों, धन–दौलत के लालच में मत पड़ों, अपनी इन्द्रियों को वश में रखों तथा मन और वचन से शुद्व रहे। इन सिद्वांतों ने संगीत का स्तर ऊंचा उठाया और परिणामतः मानवीय नैतिक स्तर ऊंचा उठा। संगीत की शिक्षा से अब छोटे–छोटे वर्ग वंचित नहीं रही। समाज में एकसूत्रता की भावना पनपी। संगीत को आत्मविकास का एक प्रबल माध्यम माना जाने लगा इनके समय में वीणा–वाद्य का विशेष प्रयोग होता था। वीणा के अतिरिक्त मृदंग और दुन्दभि का प्रयोग भी होने लगा था।

महात्मा बुद्व ने लोगों को संगीत –विद्या की और अग्रसर किया। उसने अपने परिवार में संगीत तथा नाट्यकला के जानकार थे। स्वय उनकी माता मायादेवी कला–निपुण थी। गौतम बुद्व के अन्तःपुरी में वीणा, मृदंग, पणव, तूर्य ,वेणु आदि वाद्यों का वादन तथा गायन, मनोरंजन के लिए किया जाता था। नट,नर्तक, गायक, वादक तथा नाटक–कारों के लिए नगरू में स्वतन्त्र निवास की व्यवस्था थी तथा नर्तकियों और गणिकाओं का संगीतज्ञ के रूप में विशेष सम्मान था।

बौद्व काल में संगीत और नाट्य को राजाश्रेय प्राप्त था। राज सभा में गायक, वादन और नर्तक नियुक्त रहते थे। इनके शासन की और से समुचित धन दिया जाता था और इन कलाकारों पर शासन का पूर्ण नियन्त्रण रहता था। अनेक उत्सवों का आयोजन होता था और गीत,वाद्य तथा नृत्य की त्रिवेणी प्रवाहित हो उठती थी। चीनी–यात्रों फाहियान ने ऐसी ही अनेक मगध में होने वाले उत्सवों का वर्णन अपने यात्रा–विवरण में दिया है। ये सामूहिक उत्सव समज्जा या समाज कहे जाते थे। इस काल में तत, विहत धन तथा सुषिर। इन चतुविधि वाद्यों का प्रचुर उल्लेख हैं। तत् वाद्यों में वीणा, परिवादिनी, विपंची, वल्क्की, मस्तों,नकुली, कश्पों तथा तुम्ब वीणा आदि थे। वीणा उस समय का प्यारा वाद्य रहा है। इस वाद्यों ने महात्मा बुद्व को भी प्रभावित किया था।[3] अवनद्व वाद्यों में मृदंग, मेरी, वणन, दुन्दभि का उल्लेख मिलता है।[2] घनवाद्यों में घण्टा, जल्लली, फल्लरी, तथा कान्स्य ताल का निर्देश है। सुषिर वाद्यों में शंख, तूर्य, कुराल, शृंग आदि का उल्लेख है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि बौद्व काल में संगीत का प्रयोग मानव–कल्याण के लिए हुआ। महात्मा बुद्व ने संगीत को सांसारिक न मान कर उसे कल्याणकारी और मानव–हितकारी मानते है। संगीत को पवित्र माना गया और महात्मा बुद्व के आर्दश–सम्मान में अनेक सुन्दर गीतों का प्रणयन भी हुआ। संगीत अन्तर्गत ग्राम , मूर्च्छना के साथ, रागों का प्रचलन भी आरम्भ हुआ। नाटकों में संगीत का विशेष स्थान था। संगीत कला का विकास, इस युग में भावनात्मक और कलात्मक –दोनों ही दृष्टियों में हुआ।

संगीत की परम्परा में भारत मुनि कृत नाट्य शास्त्र का विशेष महत्पूर्ण स्थान है। इनका नाट्यशास्त्र (3री 4थी सदी) संगीत का आदिग्रन्थ कहा जा सकता है। नाट्य शास्त्र के छह अध्याय (28 से 33 तक) संगीत से सीधा सम्बन्ध रखते है। इनमें अट्ठाईसवें अध्याय में वाद्या के चार भेद – स्वर, श्रुति, ग्राम, मूर्च्छनाएं, अठारह जातियों , उनके ग्रह ,अंश ,न्यास इत्यादि का विवरण है। उन्नीसवें अध्याय में जातियों का रसानुकूल प्रयोंग तथा विभिन्न प्रकार की वीणाएं और उनकी वादन–विधि दी गई है। तीसवें अध्याय में सुषिर वाद्यों का वर्णन, इक्तीसवें में कला ,लय और विभिन्न तालों का विवरण, बत्तीसवें में धुव्र के पांच भेद, छन्द–विधि तथा गायक–वादकों के गुण दिए हैं और तेतीसवें में अनवद्व वाद्यों की उत्पति, भेद वादन–विधि तथा इनके वादन की अठारह जातियों और वादकों के लक्षणों का वर्णन है।

इस प्रकार 28 वें 29 वें अध्याय तो बहुत ही महत्व के हैं। इनके अतिरिक्त छठे अध्याय में रस का लक्षण और व्याख्या,भाव का लक्षण और व्याख्या , आठ रसों का उनके उपकरणों – सहित वर्णन , रसों के देवता और वर्ण तथा सातवें में भाव, विभाव,अनुभाव आदि की सामन्य व्याख्या, स्थायी , व्याभिचारी और सात्विक भावों का विवरण दिया गया है। 19वें अध्याय में स्वरों का रसों में विनियोग, तीन स्थान, काकु, अलंकार आदि का वर्णन है। इस आधार पर नाट्य –शास्त्र के नौ अध्याय संगीत के विद्यार्थी के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

भरतमुनि के पुत्र दत्तिल द्वारा लिखित 'दत्तिलम' ग्रन्थ का उल्लेख भी मिलता है,जिसमें भारत के सूत्रों का ही प्रतिपादन किया है। 8वीं शताब्दीं में मतंग मुनी रचित वृहद्देशी ग्रन्थ मिलता है, जिसमें ग्राम

और मूर्च्छना का विस्तृत रूप में उल्लेख किया गया है। इस रचना के नाम से ही यह स्पष्ट होता है कि इनमें वृहद रूप से देशी रागों की व्याख्या की गई है। देशी संगीत, साधारण लोगों, स्त्रियों, बच्चों आदि मानव के सभी व्यक्तियों को प्रिय था, इसलिए इनका नाम देशी संगीत पढ़ा।[4] मतंग मुनि के समय में न केवल जातियों का स्थान रागों ने ले लिया था, बल्कि अनेक प्राचीन रागों के स्थान पर कुछ नए राग को प्रचलित हो गए थे। मतंग के मताअनुसार जातियों से ही ग्राम–रागों की उत्पति हुई है तथा स्वर और श्रुतियों से जातियों का जन्म हआ। राग–जाति की परिभाषा देते समय मतंग लिखते है कि – स्वरों का ऐसा आकर्षक मेल ,जो चित को प्रसन्नता दे, राग कहलाता है। 'जातियों के विषय में उन्होनें वे ही दस लक्षण – ग्रह, अंश, तार मंद्र, षाडव, ओडुव, अल्पत्व, बहुत्व , न्यास और अपन्यास – जो आज भी रागों के है, बताए है। मतंग ने सर्वप्रथम संगीत के साहित्य में राग शब्द का प्रयोग किया है।

सातवीं शताब्दी के लगभग नारदीय शिक्षा नामक एक ग्रन्थ नारद का लिखा हुआ मिलता है। ये नारद, देवषि नारद से भिन्न हैं। इनका एक और ग्रन्थ संगीत मकरंद कहा जाता है। पंडित शारंग देव का संगीत रत्नाकर (13वीं शताब्दी) एक महत्तपूर्ण ग्रन्थ है। नाट्यशास्त्र की भांति इसका भी बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इनके बाद जितने ग्रन्थों का निर्माण हुआ उन का इनका प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। पंडित शारंगदेव संगीत के लक्ष्य और लक्षण दोनों में पारगंत थे। उन्होनें कुछ प्रबन्धों और तालों का भी आविष्कार किया था। संगीत शास्त्र और कला–दोनों में पारगंत होने के कारण, इनका ग्रंथ भारतीय संगीत के लिए प्रमाणिक ग्रन्थ माना गया है। आज भारत में प्रचलित उत्तर हिन्दुस्तानी तथा दाक्षिणात्य –दोनों पद्वतियों में इनको सम्मान रूप से आदर दिया जाता है।[5]

मुसलमानों के कारण भारत में प्रवेश के कारण काव्य और संगीत में न केवल परिवर्तन आया अपितु इन कलाओं को नुकसान भी पहुंचा। भारतीय संगीत परम्परा की गति मन्द हो गयी और उसमें ख्याल जैसी विदेशी संगीत–पद्वति का आरम्भ हुआ जिसमें संगीत के साथ उच्चकोटी की साहित्यिकता का अभाव होता था।

संदर्भ

1 पंडित जगदीश नारायण पाठक : संगीत निबन्ध माला, (1989 ई.), पृष्ठ 16
2 प्रो. स्वतन्त्र शर्मा , भारतीय संगीत, एक ऐतिहासिक विष्लेषण, (1988 ई0), पृष्ठ 21।
3 प्रो. स्वतन्त्र शर्मा , भारतीय संगीत, एक ऐतिहासिक विष्लेषण, (1988 ई0), पृष्ठ 23।
4 वंसतःसंगीत विशारद (सं. लक्ष्मीनारायण गर्ग), (1981 ई0), पृष्ठ 21।
5 डॉ. शरच्चन्द्र श्रीधर पराजेय : संगीत बोध), (1992 ई0), पृष्ठ 17।